साप्ताहिक
Live not just breaTHE

दि कार्मिक पोस्ट

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

Global School Of Excellence, Obedullaganj

वर्ष : 6, अंक : 42 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 9 जून से 15 जून 2021 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

नदियों में सीधे जा रहा है 74 फीसदी सीवेज

मुंबई। भारत में शहरीकरण के साथ ही शहरों पर सीवेज का बोझ भी बढ़ता जा रहा है। इसके साथ ही बढ़ती जा रही है सीवेज की उपचार की समस्या। यह समस्या दशकों से बनी हुई है। इस समस्या को दूर करने के लिए बड़े पैमाने पर सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट की आवश्यकता है। हालांकि इस दिशा में काम जरूर हुए हैं लेकिन वे ऊंट के मुंह में जीरा ही साबित हो रहे हैं। अनुमान है कि देश में उत्पन्न 78 प्रतिशत सीवेज बिना उपचारित नदियों में प्रवाहित किया जा रहा है। यह अनुपचारित सीवेज स्वच्छ भारत की राह में सबसे बड़ी बाधा है।

मौजूदा समय में 55-56 मिलियन टन म्यूनिसिपल सॉलिड वेस्ट हर साल शहरों से निकलता है। अनुमान है कि 2030 तक 165 मिलियन टन सॉलिड वेस्ट हर साल निकलेगा। ऐसे में इसे उपचारित करने की चुनौती बड़ी है। अगर सीवेज की बात करें तो भारत में 72,368 मिलियन लीटर (एमएलडी) सीवेज प्रतिदिन उत्पन्न होता है जबकि उपचार क्षमता 31,841 एलएलडी ही है। हैरानी की बात यह भी है कि अधिकांश सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट (एसटीपी) अपनी क्षमता से बहुत कम सीवेज का उपचार कर रहे हैं। इस कारण भारत का कुल 28 प्रतिशत सीवेज ही उपचारित हो पाता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के आंकड़े बताते हैं कि 10 राज्य/केंद्र शासित प्रदेश- अंडमान एवं निकोबार दीप समूह, अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, लक्ष्यद्वीप, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम और नागालैंड अपने सीवेज का उपचार ही नहीं करते। इसके अलावा 13 राज्य/केंद्र शासित प्रदेश ऐसे हैं जो अपने सीवेज का 20 प्रतिशत से भी कम हिस्सा उपचारित करते हैं। इनमें झारखंड, केरल, त्रिपुरा, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, जम्मू एवं कश्मीर, दमन दीव, आंध्र प्रदेश, गोवा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु और पुदुचेरी शामिल हैं। सात राज्य- सिक्किम, तेलंगाना, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश और महाराष्ट्र 50 प्रतिशत से कम सीवेज उपचारित करते हैं। केवल पांच राज्य- गुजरात, हरियाणा, दिल्ली, पंजाब और चंडीगढ़ की 50 प्रतिशत से अधिक सीवेज उपचारित करते हैं। शहरों का अनुपचारित सीवेज नालों के माध्यम से सीधे नदियों में बहा दिया जाता है जिससे न केवल नदियां प्रदूषित होती हैं बल्कि जलीय जीवों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अनुमान के मुताबिक, 2050 तक शहरों में 416 मिलियन यानी 41.6 करोड़ लोग और रहने लगेंगे। इस तरह देश की 58 प्रतिशत आबादी की रिहाइश शहरों में होगी। देश के सकल घरेलू उत्पाद में शहरों में रहने वाली आबादी की हिस्सेदारी अभी 62 से 63 प्रतिशत है जो 2030 में बढ़कर 75 प्रतिशत हो जाएगी। इस प्रकार के आर्थिक विकास के गंभीर परिणाम निकलेंगे। शहरों से उत्पन्न सीवेज शहरीकरण की सबसे बड़ी चुनौती बनकर उभरेगा।

साभार - डाउन टू अर्थ

जहरीली हवा ने ली 16.7 लाख लोगों की जान

नई दिल्ली। वायु प्रदूषण ने आम लोगों के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाकर बीते कुछ वर्षों में न सिर्फ आर्थिक बोझ को बढ़ाया बल्कि यह घातक और जानलेवा भी साबित हो रहा है। 2019 में उच्च रक्तचाप, तंबाकू के इस्तेमाल और कुपोषित आहार के बाद वायु प्रदूषण ही पूरी दुनिया में अकाल मृत्यु का चौथा सबसे बड़ा कारण रहा है। भारत में 2019 में 16.7 लाख मौतों का कारण वायु प्रदूषण रहा। इनमें 50 फीसदी यानी 851,698 मौतें देश के महज पांच राज्यों में ही हुई हैं।

इन पांच राज्यों की सूची में उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल और राजस्थान शामिल हैं। वायु प्रदूषण के सर्वाधिक भुक्तभोगी यह पांच राज्य न सिर्फ बड़ी आबादी वाले हैं बल्कि इन राज्यों में प्रति व्यक्ति आय भी बेहद कम है। वायु प्रदूषण के कारण इन राज्यों में समयपूर्व मौतें और रुग्णता बढ़ी है जिससे इन पांच राज्यों को 2019 में 36,803 बिलियन अमेरिकी डॉलर की लागत का नुकसान उठाना पड़ा। वहीं, 2019 में 17 लाख मौतों में 58 फीसदी मौतें बाहरी वायु प्रदूषण (आउटडोर एयर पॉल्यूशन) के कारण हैं जबिक 36 फीसदी मौतें भीतरी यानी घर के भीतर होने वाले वायु प्रदूषण के कारण हैं। घर में वायु प्रदूषण का सबसे बड़ा कारक प्रदूषित ईंधन से खाने का पकाया जाना है। 2019 में वायु प्रदूषण के यह नतीजे नए नहीं हैं बल्कि बीते कुछ वर्षों से यह प्रवृत्ति चली आ रही है। वहीं, सर्वाधिक चिंताजनक है कि इसके शिकार बच्चे होते हैं। यदि 1990 से 2018 तक उपलब्ध ग्लोबल बर्डन डिजीज (जीबीडी), 2017 के आंकड़े बताते हैं कि पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों को ही सबसे ज्यादा वायु प्रदूषण जनित निचले फेफड़ों का संक्रमण (एलआरआई) होता है। जीबीडी 2017 की रिपोर्ट के मुताबिक 1990 में पांच वर्ष से कम उम्र वाले बच्चों की डायरिया से 16.73 फीसदी (4.69 लाख मौतें) हुई थीं जबकि 2017 में नियंत्रण से यह 9.91 फीसदी (एक लाख) पहुंच गई। वहीं, निचले फेफड़ों के संक्रमण से 1990 में 20.20 फीसदी (5.66 लाख मौतें) हुई थी जो कि 2017 में 17.9 फीसदी (1.85 लाख) तक ही पहुंची। यानी करीब तीन दशक में एलआरआई से मौतों की फीसदी में होने वाली गिरावट की रफ्तार बेहद मामूली है, जिसका अर्थ है कि इस दिशा में प्रयास बहुत धीमे किए जा रहे हैं। वायु प्रदूषण में पार्टिकुलेट मैटर 2.5 एक प्रमुख प्रदूषक है। इसका तय मानकों से कई गुना ज्यादा होना और वायु प्रदूषण जनित मौतों का सीधा संबंध देखा गया है। जहां पीएम 2.5 प्रदूषण ज्यादा रहा है और वहां होने वाली मौतें भी

2030 तक सभी देशों को भूमि सुधार के अपने वादों को निभाना होगा- संयुक्त राष्ट्र

न्यूयार्क। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) और खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) की एक नई रिपोर्ट में कहा गया है कि दुनिया भर में लोगों को अगले दशक में कम से कम एक अरब हेक्टेयर खराब भूमि में तत्काल सुधार कर इसे बहाल करना होगा। रिपोर्ट में कहा गया है कि अगर हम जैव विविधता के नुकसान से बचना चाहते है तो भूमि सुधार आवश्यक है।

दुनिया प्रकृति द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं का 1.6 गुना उपयोग कर रही है। इस बात को स्वीकार किया गया कि बड़े पैमाने पर होने वाले पारिस्थितिकी तंत्र के नुकसान को रोकने के लिए केवल संरक्षण प्रयासों से ही काम नहीं चलेगा। पारिस्थितिक तंत्रों में खेत, जंगल, घास के मैदान और सवाना, पहाड़, पीटलैंड, शहरी क्षेत्र, ताजे पानी के स्रोत और महासागर शामिल हैं। लगभग दो अरब हेक्टेयर खराब भूमि में रहने वाले समुदायों में दुनिया के कुछ सबसे गरीब और हाशिए पर रहने वाले लोग शामिल हैं। जनरेशन रिस्टोरेशन- इकोसिस्टम रिस्टोरेशन फॉर पीपल, नेचर एंड क्लाइमेट, नामक रिपोर्ट में कहा गया है कि- स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र का अब केवल संरक्षण करना ही महत्वपूर्ण नहीं है। हम अपने जीवन के वर्तमान तरीके से जीने के लिए हम 1.6 धरती के बराबर का उपयोग कर रहे हैं और पारिस्थितिकी तंत्र हमारी इतनी बड़ी मांगों को पूरा नहीं कर सकते हैं। दुनिया भर में भूमि सुधार और उनकी बहाली की लागत तथा समुद्री पारिस्थितिक तंत्र को बहाल करने की लागत सहित 2030 तक हर साल कम से कम 200 बिलियन डॉलर होने का अनुमान है। रिपोर्ट में बताया गया है कि सुधार एवं बहाली में निवेश किए गए हर 1 डॉलर से, 30 डॉलर तक का आर्थिक लाभ हो सकता है। पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली, इसमें हो रही गिरावट को रोकने और इसे पहले जैसा बनाने की प्रक्रिया है, जिसके परिणामस्वरूप हमें स्वछ हवा और पानी, चरम मौसम को कम करने, लोगों के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने और पौधों के बेहतर परागण सहित जैव विविधता का पुनरुद्धार होता है।

रिपोर्ट में कहा गया है कि भूमि में हो रही गिरावट पहले से ही लगभग 320 करोड़ लोगों पर असर डाल रही है। यह दुनिया की आबादी का 40 फीसदी हिस्से के बराबर है। हम हर साल, अपने वैश्विक आर्थिक उत्पादन के 10 फीसदी से अधिक मूल्य की पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का नुकसान झेल रहे हैं।

अछी बात यह है कि प्रकृति में नवीकरण की असाधारण क्षमता है। रिपोर्ट में कहा गया है कि कुछ पारिस्थितिक तंत्र एक ऐसे मोड़ पर पहुंच रहे हैं जहां से वे उबर नहीं सकते हैं। यदि हम हो रहे नुकसान को रोकते हैं तो कई चीजें फिर से फल-फूल सकते हैं और उनके स्वास्थ्य, जैव विविधता और उत्पादकता फिर से बहाल हो सकती है।

रिपोर्ट खाद्य सुरक्षा को बढ़ाने को लेकर उत्पादक पारिस्थितिकी तंत्र को बहाल करने के महत्व को भी सामने लाई है। रिपोर्ट में कहा गया है कि मात्र कृषि वानिकी की बहाली करने से ही 130 करोड़ लोगों के लिए खाद्य सुरक्षा बढ़ाई जा सकती है। अधिकतम स्थायी उपज देने के लिए समुद्री मछलियों की आबादी को बहाल करने से मत्स्य उत्पादन में 165 लाख टन की वृद्धि हो सकती है, जिसका वार्षिक मूल्य 32 बिलियन डॉलर है। भूमि में आ रही गिरावट को रोकने, इसमें सुधार करने वाली कार्रवाइयां वैश्विक तापमान में एक तिहाई कमी ला सकती हैं जिसकी 2030 तक बहुत आवश्यकता है। यूएनईपी कार्यकारी निदेशक, इंगर एंडरसन और एफएओ निदेशक जनरल, क्व डोंग्यु ने रिपोर्ट की प्रस्तावना में लिखा है कि यह रिपोर्ट इस मामले को प्रस्तुत करती है कि क्यों न हम सभी को अपने आपको खराब हो रही भूमि में सुधार और इसकी बहाली के प्रयास के पीछे झोंक देना चाहिए। नवीनतम वैज्ञानिक साक्ष्यों के आधार पर, यह पारिस्थितिक तंत्र द्वारा निभाई जाने वाली अहम भूमिका जंगलों और खेत से लेकर नदियों और महासागरों तक को निर्धारित करती है। साथ ही यह ग्रह के खराब प्रबंधन के परिणामस्वरूप होने वाले नुकसान को भी सामने लाती है। रिपोर्ट को पारिस्थितिकी तंत्र के बहाली 2021-2030 पर संयुक्त राष्ट्र के दशक के रूप में जारी किया गया है। एफएओ और यूएनईपी ने संयुक्त राष्ट्र दशक के लिए डिजिटल हब भी लॉन्च किया, जिसमें पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली और निगरानी के लिए ढांचा बनाना शामिल है।यह ढांचा देशों और समुदायों को प्रमुख पारिस्थितिक तंत्रों में बहाली परियोजनाओं की प्रगति को मापने में सक्षम बनाता है, जिससे बहाली के प्रयासों में मालिकाना हक और विश्वास को बढ़ाने में मदद मिलती है।

साभार - डाउन टू अर्थ

कोरोना से संक्रमित हुए मरीज में आम नहीं है बैक्टीरियल इंफेक्शन- लैंसेट

लंदन। जर्नल लैंसेट माइक्रोब में 02 जून को छपे एक शोध के अनुसार यदि कोई व्यक्ति सामुदायिक प्रसार (कम्युनिटी स्प्रैड) के चलते कोविड-19 वायरस से संक्रमित हुआ है, तो साथ ही उसमें बैक्टीरियल इंफेक्शन का होना सामान्य नहीं है। यदि स्पष्ट शब्दों में कहें तो इस तरह के सार्स-कोव-2 से संक्रमित लोगों में बैक्टीरियल इंफेक्शन की सम्भावना बहुत कम होती है। इसके बावजूद उन्हें रोगाणुरोधी दवाओं (एंटीमाइक्रोबियल या एंटीबायोटिक दवाओं) का दिया जाना एक चिंता का विषय है। शोधकर्ताओं ने कहा है कि ऐसे में एंटीमाइक्रोबियल दवाओं के अनावश्यक उपयोग से बचना चाहिए। इन दवाओं को तभी दिया जाना चाहिए जब परीक्षण के बाद इस बात की पुष्टि हो जाए कि संक्रमित व्यक्ति में किसी तरह का बैक्टीरियल इंफेक्शन है। उनके अनुसार इस तरह की गाइडलाइन को कोविड-19 के इलाज में शामिल करने से इन एंटीमाइक्रोबियल दवाओं के अनावश्यक उपयोग में कमी आएगी जिससे लम्बे समय में होने वाले सूक्ष्मजीवीरोधी प्रतिरोधक क्षमता (एंटीमाइक्रोबियल रेसिस्टेंस) को रोकने में मदद मिलेगी।

इस शोध से जुड़ी शोधकर्ता और ग्लासगो विश्वविद्यालय में संक्रामक रोगों पर काम कर रही एंटोनिया हो ने बताया कि ÷महामारी से पैदा हुई अभूतपूर्व चुनौतियों को देखते हुए, विशेष रूप से शुरुआती चरणों में जब रोगी बहुत ज्यादा बीमार थे और प्रभावी उपचार सीमित थे। साथ ही कोविड-19 के साथ अन्य इंफेक्शन क्यों हो रहे हैं इस बारे में जानकारी नहीं थी, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि डॉक्टरों ने एंटीमाइक्रोबियल दवाएं दी थी।÷हालांकि अब जब हम यह जानते हैं कि सामुदायिक प्रसार के जरिए सार्स-कोव-2 से संक्रमित लोगों में बैक्टीरियल इंफेक्शन की सम्भावना बहुत कम होती है। चूंकि रोगाणुरोधी प्रतिरोध हमारे समय की सार्वजनिक स्वास्थ्य की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है, ऐसे में जरुरी है कि इनके अनावश्यक उपयोग से बचा जाए, जिससे यह जीवन रक्षक दवाएं भविष्य में भी संक्रमण के लिए एक प्रभावी उपचार बनी रहें।÷

क्या कुछ निकलकर आया अध्ययन में सामने

यह शोध 6 फरवरी से 8 जून 2020 के बीच इंग्लैंड, स्कॉटलैंड और वेल्स के 260 अस्पतालों में भर्ती हुए 48,902 मरीजों के आंकड़ों पर आधारित हैं, जिनकी औसत आयु 74 वर्ष थी और जिनमें 43 फीसदी महिलाएं थीं। इनमें से 37 फीसदी मरीजों को बीमारी की वजह से अस्पताल में भर्ती होने से पहले ही रोगाणुरोधी दवाएं दी गई थी। अस्पताल में भर्ती होने के बाद 85 फीसदी को कम से कम एक रोगाणुरोधी दवा दी गई थी। शोध के अनुसार मार्च और अप्रैल 2020 के बीच रोगाणुरोधी दवाओं का उपयोग सबसे ज्यादा किया गया था जो मई के दौरान कम हो गया था। इन 48,902 मरीजों में से 8,649 रोगियों (18 फीसदी) की माइक्रोबायोलॉजिकल जांच, जैसे रक्त का परीक्षण किए गए थे। जिनमें से 13 फीसदी (1107) मरीजों में कोविड-19 से सम्बन्धी सांस या रक्तप्रवाह में जीवाणु संक्रमण पाया गया था। वहीं इन्फ्लूएंजा से गंभीर रूप से ग्रस्त 23 फीसदी मरीजों के शरीर में जीवाणु सह-संक्रमण होता है। वहीं जिन मरीजों में कोविड -19 के साथ-साथ बैक्टीरियल इंफेक्शन की भी पुष्टि हो गई थी। उन 1,080 में से 762 में यह सेकेंडरी इंफेक्शन था, जो अस्पताल में भर्ती होने के दो दिन या उससे अधिक समय के बाद सामने आया था।

इन मरीजों को कौन सी एंटीमाइक्रोबायल्स दवाएं दी गई थी उसके बारे में शोधकर्ताओं ने जानकारी दी है कि सभी नुस्खों में से 3.8 फीसदी में कार्बापेनम एंटीबायोटिक दिया गया था, जोकि गंभीर या उच्च जोखिम वाले जीवाणु संक्रमण के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है। वहीं इसके विकल्पों का जितनी बार भी नुस्खे दिए गए थे उनका केवल 0.2 से 1.5 फीसदी बार ही उपयोग किया गया था। ऐसे में शोधकर्ताओं ने सुझाव दिया है कि कोविड -19 के रोगियों को दिए जाने वाले उपचार में रोगाणुरोधी दवाओं के प्रबंधन पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। जिससे उनके अनावश्यक उपयोग से बचा जा सके और रोगी को सही इलाज मिल सके। साथ ही यदि जांच में इस बात की पुष्टि हो जाती है कि मरीज को बैक्टीरियल इंफेक्शन नहीं है तो इन एंटीमाइक्रोबियल दवाओं के उपयोग से बचना चाहिए। यदि इन रोगाणुरोधी दवाओं का इस्तेमाल करना पड़े तो रोगजनकों (पैथोजन) और स्थानीय स्तर पर मौजूद एंटीमाइक्रोबियल रेसिस्टेन्स पैटर्न को भी ध्यान में रखना चाहिए।

कितना बड़ा है एंटीमाइक्रोबियल रेसिस्टेन्स का खतरा- दुनिया के लिए एंटीमाइक्रोबियल रेसिस्टेन्स एक बड़ा खतरा है जिसकी पुष्टि विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने भी की है। एफएओ के मुताबिक एंटीबायोटिक सहित एंटीमाइक्रोबियल दवाओं का लम्बे समय से इस्तेमाल किया जा रहा है।

साभार - डाउन टू अर्थ

कानूनी संरक्षण के अभाव में जर्जर हालत में पहुंचे करोड़ों वर्ष पुराने भूस्मारक...

नई दिल्ली। धरती के अरबों वर्ष के विकासक्रम और उथलपुथल के इतिहास के गवाह भूस्मारक (जियोहेरिटेज साइट या जियोसाइट) घोर उपेक्षा के शिकार हैं। सांस्कृतिक विरासत, यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल, ऐतिहासिक संरचनाओं का संरक्षण और राष्ट्रीय उद्यान अक्सर शैक्षिक पाठ्यक्रम का हिस्सा होते हैं, लेकिन दुर्भाग्य से भूस्मारक, उनका संरक्षण और यूनेस्को ग्लोबल जियोपार्क्स को जनसामान्य द्वारा अब भी ठीक से समझा नहीं गया है।

भूस्मारक वैश्विक, राष्ट्रीय या स्थानीय स्तर के महत्वपूर्ण भूवैज्ञानिक स्थल हैं जिन्हें शिक्षण, अनुसंधान या संदर्भ के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। ऐसे स्थल जो अपने भूवैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा जैविकरूप से अंतरराष्ट्रीय स्तर के हों और स्थानीय निवासियों की उनके संरक्षण और विकास में सहभागिता भी हो, उन्हें ÷यूनेस्को ग्लोबल जियोपार्क्स÷ के रूप मे मान्यता दी जाती है। इसलिए ऐसे स्थलों का संरक्षण न केवल वैज्ञानिक रूप से उपयोगी है, बल्कि अगली पीढ़ी को शिक्षित करने, पर्यटन को बढ़ाने और रोजगार के लिए भी उपयोगी है। यहां यह भी बताना जरूरी है कि चट्टानें और जीवाश्म अपने ÷प्राकृतिक प्रयोगशाला÷ स्तर पर ही अपना सबसे अधिक महत्व रखते हैं, लेकिन जब वे अपने उत्पत्ति स्थल (आउटक्रॉप) से उखाड़ दिए जाते हैं, तो उनका भूवैज्ञानिक मूल्य बहुत कम हो जाता है। अपनी उत्पत्ति के स्थान पर रहने से उनके गठन के दौरान चल रही भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं, पर्यावरण और टेक्टोनिक सेटिंग्स का अध्ययन सर्वथा उचित रूप से किया जा सकता है। यहां यह उल्लेख किया जाना भी आवश्यक है कि अधिकांश सांस्कृतिक विरासत स्थलों को काफी हद तक बहाल किया जा सकता है, मगर भूवैज्ञानिक स्थलों को अगर एक बार नष्ट कर दिया गया तो कभी पुनर्निर्मित नहीं किया जा सकता, इसलिए उनका संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रकृति ने भारत को दुनिया के सबसे प्रसिद्ध भूवैज्ञानिक स्थलों से नवाजा है। पृथ्वी के भूगर्भीय विकास के एक बड़े कालखंड के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप एक टापू की तरह बना रहा, फिर अंत में यूरेशिया प्लेट से टकराने के बाद विशाल हिमालय पर्वत श्रृंखला का जन्म हुआ। इसलिए, भारतीय ÷द्वीप÷ पर मौजूद जीवन दुनिया के लिए अद्वितीय है। भारतीय डायनासोर इसका एक रोचक उदाहरण है। भारतीय द्वीप में पैदा हुए डायनासोर अपने रिश्तेदारों से कटे से रहे। उनके विकास का इतिहास दुनिया में विशेष प्रकार का भूवैज्ञानिक डेटा प्रदान करता है। भारतीय डायनासोर के विकास का इतिहास जीवाश्म (अंडे, हड्डियों और मल अवशेषों) के रूप में मध्य भारत की भूगर्भिक चट्टानों में संरक्षित हैं। प्राणहिता-गोदावरी घाटी क्षेत्र में तेलंगाना के आदिलाबाद से सबसे पुराने डायनासोर (लगभग 23 करोड़ वर्ष) के जीवाश्म पाए गए। इसी क्षेत्र में कोटा फॉर्मेशन से 19 करोड़ वर्ष पुराने जुरासिक डायनासोर के जीवाश्म प्राप्त किए गए। क्रिटेसियस डायनासोर (लगभग 6 करोड़ वर्ष) के जीवाश्म मध्य प्रदेश के नर्मदा घाटी में जबलपुर के बाघ और गुजरात के खेड़ा के आसपास की चट्टानों में देखे जा सकते हैं। इन विशाल प्राणियों ने 17 करोड़ से अधिक वर्षों तक पृथ्वी पर शासन किया और क्रिटेसियस काल (6.5 करोड़ वर्ष) के अंत तक उनका नामोनिशान धरती से मिट

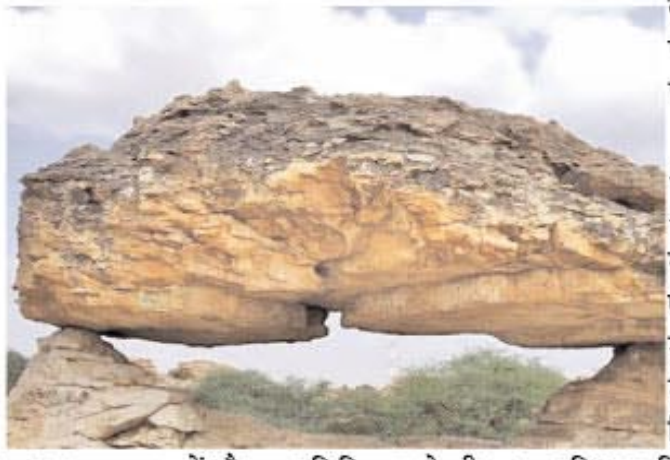

गया। जबलपुर में कैप्टन विलियम हेनरी स्लीमैन द्वारा 1828 में डायनासोर के जीवाश्मों की पहली खोज के बाद से नर्मदा घाटी क्षेत्र डायनासोर के जीवाश्मों और अंडे के घोंसले के लिए विश्व प्रसिद्ध है। आपने इनकी सबसे खूंखार प्रजाति ÷टी रेक्स÷ का नाम सुना ही होगा। इसी भारतीय ÷टी रेक्स÷ को ÷राजासौरस नरमैडेन्सिस÷ अर्थात नर्मदा का राजा नाम दिया गया है। 1997 में नर्मदा घाटी के किनारे जबलपुर और अहमदाबाद के बीच एक अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र कार्यशाला के दौरान अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक शिष्टमंडल (संयोगवश मैं भी इसका हिस्सा था) ने गुजरात के राज्य प्राधिकारियों से मुलाकात की और उन्हें इन भूगर्भिक खजाने के संरक्षण के लिए प्रेरित किया। डायनासोर के अंडे को स्थानीय लोग अवैध रूप से कुछ रुपए के लालच में बेच रहे थे। गुजरात सरकार द्वारा खेड़ा जिले के रायोली में इन भूगर्भ स्थलों की सुरक्षा के लिए कोई उचित कानून न होने से ÷बंबई पुलिस अधिनियम-1951÷ के तहत संरक्षित घोषित किया गया तथा एक डायनासोर पार्क और एक संग्रहालय स्थापित किया गया। हाल ही में मुख्यमंत्री विजय रूपानी ने पुनर्निर्मित डायनासोर संग्रहालय का उद्घाटन किया। इस संरक्षण के प्रयास में जीवाश्म साइट के खोजकर्ता जीएसआई के पूर्व उपमहानिदेशक डीएम मोहाबे का विशेष योगदान है। लेकिन मध्य प्रदेश मे धार जिले के बाग के डायनासोर जीवाश्म स्थलों के संरक्षण की कहानी कुछ अलग ही है। धार के बकनेर स्थित हायर सेकेंडरी स्कूल के फिजिक्स टीचर विशाल वर्मा ने 1986 में बाग क्षेत्र के आसपास कई डायनासोर के अंडों और उनके घोंसलों की खोज की और इस प्रकार वह जियोहेरिटेज कंजर्वेशन के एक प्रतीक से बन गए, जहां आम लोग भी भू-धरोहर के संरक्षण में शामिल थे। कई भूविज्ञान छात्रों को उनके इस अपार योगदान पर आगे अनुसंधान करने के कारण पीएचडी की डिग्री प्राप्त हुई। वर्मा ने मनावर (धार) में एक व्यक्तिगत जीवाश्म संग्रहालय ÷हरिपद आनंद मठ÷ भी बनाया है। डायनासोर नेस्टिंग साइटों के संरक्षण के लिए उनका धर्मयुद्ध फलीभूत हुआ और जिला अधिकारियों ने मांडू के ऐतिहासिक स्थान पर एक जीवाश्म संग्रहालय की स्थापना की। लेकिन दुर्भाग्य से डायनासोर और उस काल के पेड़-पौधों के बहुत से जीवाश्म अवशेष इस क्षेत्र से चोरी कर लिए गए।

गुजरात के कच्छ जिले के अंजार में भूगर्भीय चट्टानों में ÷इरीडियम÷ तत्व की उच्च सांद्रता 6.5 करोड़ साल पहले एक बड़े पैमाने पर हुए उल्कापात का सबूत है जो डायनासोर के अचानक विलुप्त होने का कारण बना। इस विश्व प्रसिद्ध क्षेत्र में नई रेल लाइन डालने के कारण इसके प्रश्तर खंड नष्ट हो गए। इस महत्वपूर्ण खंड की दयनीय स्थिति को देखकर गांधीनगर के जीएसआई के वरिष्ठ अधिकारी ललित ठाकुर ने स्थानीय व रेलवे अधिकारियों से मुलाकात कर इस ÷आउटक्रॉप÷ का महत्व समझाया। तब इस सेक्शन को नायलॉन नेट से कवर किया गया। बेहतर होता अगर कम से कम तार की जाली का उपयोग किया जाता। ऐसी कई कहानियां हैं जहां व्यक्तियों (राज्य वन प्राधिकरणों या अन्य एजेंसियों के स्थानीय या सरकारी अधिकारी) ने कार्रवाई की और ऐसी साइट्स की रक्षा भी की। हालांकि, जियोहेरिटेज साइट्स की सुरक्षा के लिए कोई कानून न होने से इक्का-दुक्का प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर अपेक्षित प्रभाव नहीं ला पा रहे हैं। यह भी देखा गया है कि पर्यटन विभाग द्वारा विकसित कई संरक्षित प्राकृतिक स्थलों पर वैज्ञानिक विवरण प्रदर्शित नहीं किया जाता। कई मामलों में भ्रामक विवरण प्रदर्शित किया जाता हैं। उदाहरण के लिए भारत की सबसे बड़ी गुफाओं में से एक विशाखापत्तनम जिले की बोरा गुफाओं के प्रवेश द्वार पर डिस्प्ले बोर्ड बताता है कि यह गुफा 15 करोड़ साल पुरानी है। यह उस चट्टान के उत्पत्ति की उम्र है जिसमें गुफा विकसित हुइ है, न कि गुफा की। इसी प्रकार आंध्र प्रदेश के करनूल जिले में स्थित बहुत ही सुंदर ÷ओरवाकल रॉक गार्डन÷ की चट्टानों में विकसित संरचनाओं के बारे में बताने के लिए वहां कुछ भी विवरण नहीं दिया गया है। इसलिए, ऐसी संरक्षित साइटें केवल मनोरंजन स्थल बनकर रह गई और ज्ञान स्थल नहीं बन पाईं। भारत में भूस्मारकों के संरक्षण की अवधारणा वैश्विक अवधारणा से भी पुरानी है। सर्वप्रथम 1951 में तमिलनाडु के पेराम्बलुर जिले में थिरुवकाराई, विल्लुपुरम और साथनूर के लकड़ी के जीवाश्मों को भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (जीएसआई) द्वारा राष्ट्रीय भूवैज्ञानिक स्मारक (एनजीएम) घोषित किया गया था। विश्व में 1990 के दशक में इस पर विशेष ध्यान दिया गया और साल 2000 में यूरोपीय देशों ने जियोपार्क्स की अवधारणा रखी जिसे 2004 में यूनेस्को ने मान्यता दी। भारत में 1970 के दशक में कई अन्य भू-स्थानों को एनजीएम के रूप में नामित किया गया। हाल ही में कई और स्थलों को जोड़ने के साथ ही भारत में भूस्मारकों की कुल संख्या 32 हो गई है, फिर भी कई हॉटस्पॉट अब भी एनजीएम के रूप में स्थापित किए जाने के लिए लंबित हैं। देश के कुछ 50 भू-स्थानों (एनजीएम को जोड़कर) का विवरण 2020 में होने वाले अंतरराष्ट्रीय भूवैज्ञानिक कांग्रेस के लिए तैयार किया गया था। इनमें से कुछ एनजीएम जीएसआई/राज्य सरकारों द्वारा संरक्षित रखे गए हैं, परंतु अधिकांश घोर उपेक्षा की स्थिति में हैं। अब ये विलुप्त होने की कगार पर पहुंच रहे हैं। भारत ने शुरू में इनके संरक्षण की दिशा में मजबूत कदम उठाए पर बाद में हम पिछड़ गए। वियतनाम और थाईलैंड जैसे कुछ छोटे-छोटे देशों सहित 49 देशों में अब तक 166 यूनेस्को ग्लोबल जियोपार्क हैं। इन देशों के अलावा कुछ अन्य ने भी अपनी भूगर्भीय और प्राकृतिक विरासत के संरक्षण के लिए उचित कानून लागू किए हैं। परंतु भारत मे अब तक कोई भी यूनेस्को ग्लोबल जियोपार्क स्थापित नही किया जा सका। कुछ दशक पहले तक अधिकांश भूगर्भ स्थल शहरों की रोशनी से दूर थे और इसलिए सीधे खतरे की आशंका कम थी। जनसंख्या वृद्धि की तेज गति, विकास के साथ सहवर्ती औद्योगीकरण और लगातार निर्माण गतिविधियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों के दोहन ने भूगर्भ स्थलों की सुरक्षा खतरे में डाल दी है। भारत में हमारे सांस्कृतिक स्मारकों और जैविक विविधता वाले क्षेत्रों की रक्षा के लिए ÷प्राचीन स्मारकों और पुरातात्विक स्थलों और अवशेष अधिनियम, 1958÷ और ÷जैविक विविधता अधिनियम, 2002÷ को लागू किया गया था, लेकिन दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण भूवैज्ञानिक विरासत (प्राकृतिक स्मारकों) को उपेक्षित छोड़ दिया गया। भारत में भूगर्भीय विरासत के प्रति यह उदासीनता क्यों है? वह भी तब जब दुनिया का सबसे पुराना भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण संगठन (जीएसआई), कई प्रमुख अनुसंधान और खनिज अन्वेषण संस्थान, प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में भूविज्ञान विभाग, भूविज्ञान और खनन के राज्य निदेशालय आदि यहां मौजूद हैं।

साभार - डाउन टू अर्थ

कोरोना की दूसरी लहर में शहरों के मुकाबले गांव अधिक प्रभावित

नई दिल्ली। कोविड-19 (कोरोना) महामारी ने भारत की स्वास्थ्य प्रणाली को बुरी तरह बेनकाब कर दिया है। शहरी भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की बदतर स्थिति व कोरोना से लड़ने की उसकी तैयारियां सुर्खियों में रही है। वहीं ग्रामीण भारत के भीतरी इलाकों से जो परिदृश्य उभर कर आई, वो अत्यधिक चिंताजनक रही- यह बातें आज सेंटर फॉर साईंस एंड एनवायरनमेंट एवं डाउन टू अर्थ पत्रिका द्वारा संयुक्त रूप से जारी की गई स्टेट ऑफ इंडियाज एनवायरमेंट एन फिगर्स 2021 रिपोर्ट में कही गई है।

रिपोर्ट बताती है कि- ग्रामीण भारत में सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों को 76 प्रतिशत अधिक डॉक्टरों, 56 प्रतिशत अधिक रेडियोग्राफरों और 35 प्रतिशत अधिक लैब तकनीशियनों की आवश्यकता है। इस रिपोर्ट में वायु प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन से लेकर जैव विविधता, कोविड, कृषि और भूमि से लेकर पानी व कचरे तक कई महत्वपूर्ण विषयों को शामिल किया गया है। पर्यावरण और विकास के आंकड़ों पर आधारित वार्षिक रिपोर्ट को सीएसई द्वारा आयोजित एक वेबिनार में जारी करते हुए केंद्र की महानिदेशक सुनीता नारायण ने कहा, ÷यह संख्याओं का नाटक जैसा ही है, खासकर जब ये नंबर आपको एक ट्रेंड देती है और बताती है कि चीजें बेहतर या बदतर हो रही है। यह और भी शक्तिशाली हो जाती है जब आप संकट, चुनौती और अवसर को समझने के लिए इन संख्याओं के ट्रेंड का उपयोग करते हैं। संख्या के माध्यम से महामारी के बारे में विश्लेषणात्मक रिपोर्ट तैयार किया गया है इसने कई अन्य दिलचस्प तथ्यों की एक श्रृंखला को सामने लाने में मदद की है। एक महत्वपूर्ण जानकारी जो सामने आ रही है, वह यह है कि दूसरी लहर में, भारत विश्व स्तर पर सबसे बुरी तरह प्रभावित हुआ है और ग्रामीण भारत, हमारे शहरी क्षेत्रों की तुलना में काफी बुरी तरह प्रभावित हुआ है। इस साल मई में, छह दिनों में दैनिक रूप से जो विश्व में संक्रमण के मामलों आये उसमें आधे से अधिक में अकेले भारत का योगदान था। संक्रमण अपने चरम पर दिखा क्योंकि ग्रामीण जिलों में संक्रमण के मामलों में काफी वृद्धि देखी गई। महापात्रा आगे कहते हैं- जलवायु संबंधी जोखिमों के साथ, संक्रामक रोग 2006 के बाद पहली बार प्रमुख वैश्विक आर्थिक खतरों की सूची में शामिल हुए हैं। बायोमेडिकल कचरा (वेस्ट) के भार की ओर इशारा करते हुए यह उल्लेख किया गया है कि देश इस वक्त महामारी से जूझ रहा है। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि अप्रैल और

मई 2021 के बीच कोविड-19 बायोमेडिकल कचरे के उत्सर्जन में 46 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वहीं दूसरी ओर इसके ट्रीटमेंट (प्रबंधन) में गिरावट आई है- 2019 में, भारत अपने 88 प्रतिशत बायोमेडिकल कचरे का ट्रीटमेंट करने में कामयाब रहा - हालांकि 2017 देश लगभग 93 प्रतिशत तक कचरे का ट्रीटमेंट स्वंय करता था।देश में कुल आबादी का 3.12 प्रतिशत लोगों का पूरी तरह से टीकाकरण हो चुका है, टीकाकरण का वैश्विक औसत 5.48 प्रतिशत है। उस लिहाज से टीकाकरण में अभी भी कमी है। महामारी के आर्थिक प्रभाव बहुत गंभीर रहे हैं - और रहेंगे। रिपोर्ट के प्रमुख लेखकों में से एक रजित सेनगुप्ता कहते हैं, ÷महामारी कमजोर ग्रामीण जिलों में फैल गई÷इसका मतलब है कि देश को ठीक होने में अधिक समय लगेगा। इससे अगले साल सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर धीमी होने की आशंका है।÷ जबकि मई 2021 में शहरी बेरोजगारी दर लगभग 15 प्रतिशत तक पहुंच गई, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम का कार्यान्वयन में ढ़िलाई एवं भुगतान में काफी देरी देखी गई है। जम्मू और कश्मीर, बिहार, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश के राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में भुगतान में अधिकतम विलंब दर्ज किया गया है। सीएसई की इस रिपोर्ट में जलवायु परिवर्तन पर विशेष जोर दिया गया है। नारायण कहती हैं- ÷जब हम एक ऐसे खतरनाक महामारी से जूझ रहे हैं, जो लोगों को दुर्बल बना देती है ऐसे में हम एक और स्पष्ट और वर्तमान की खतरे से मुंह नहीं मोर सकते हैं जो हमारे अस्तित्व को खतरे में डाल रहा है। वह खतरा है जलवायु परिवर्तन।हमारी रिपोर्ट का डेटा खतरे की भयावहता को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। रिपोर्ट बताती है कि 2006 और 2020 के बीच की अवधि में 15 वर्षों में भारत में 12सबसे गर्म वर्ष दर्ज किए गए। यह रिकॉर्ड के रूप में सबसे गर्म दशक था। देश भर में मौसम अपने चरम पर रही और इससे जुड़ी हुई घटनाओं ने अपना कहर जारी रखा। इन आपदाओं के कारण आंतरिक विस्थापन के मामले और नुकसान के लिहाज से भारत का दुनिया में चौथा स्थान रहा। प्रवासियों से संबंधित बहुत ही कम आंकड़ें है - इसलिए जब भी लॉकडाउन लगाया जाता है तब शहरों से पलायन को लेकर जो स्थिति बनती है उसके संदर्भ में सरकार की तैयारी अपूर्ण रहती है। यह भी तथ्य है कि लोग अपने घरों से छोड़ कर - प्रवास को इसलिए जाते हैं क्योंकि उनके समक्ष जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक आपदाओं के कारण उनके समक्ष घोर आर्थिक और पारिस्थितिक संकट उत्पन्न हो जाती है और उन्हे अपना घर छोड़ना पड़ता है।

2008 और 2020 के बीच, बाढ़, भूकंप, चक्रवात और सूखे के कारण प्रति वर्ष लगभग 3.73 मिलियन लोग विस्थापित हुए । 2020 में जो महत्वपूर्ण मौसम संबंधी घटनाएं घटी उसका सचित्रण इस नक्शा में किया गया है और दूसरे अर्थों में कहे तो यह देश की नई घटनाओं का मानचित्र (कार्टोग्राफी) है। फिर इन सारे तथ्यों को जोड़ कर देखें तो फिर आपको पता चलेगा कैसे सरकारों ने इन तथाकथित प्राकृतिक आपदाओं से हुए नुकसान की भरपाई हेतु भारी मात्रा में खर्च की है और आपको समझ में आएगा कि कैसे इस तरह की हर घटना के साथ विकास के लाभांश को कैसे बर्बाद किया जा रहा है। भारत का महत्वाकांक्षी अक्षय लक्ष्य, जो हरित होने की दिशा में एक सराहनीय कदम था, उसमें वो फिसल गया है जैसा दिखता है। भारत इस संदर्भ में अपने लक्ष्य के केवल 55 प्रतिशत ही पूर्ति कर पाया है, इस लिहाज से देखें तो भारत 2022 तक 175 लक्ष्य नवीकरणीय क्षमता वाले संयत्र स्थापित कर लेगा ऐसा लगता ही नहीं है क्योंकि ये उसके करीब तक भी नहीं पहुंच पाया है। देश में 2021-22 तक कम से कम 50 सोलर पार्क स्थापित करने का भी लक्ष्य है। अब तक, उनमें से एक को भी चालू नहीं हो पाया है। हम ऐसे समय और युग में है जहां हमारे पास आमतौर पर उपलब्ध डेटा की गुणवत्ता या तो खराब होती है -इसमें या तो आंकड़े अधिकतर गायब है, सार्वजनिक रूप से अनुपलब्ध है या तो उसकी गुणवत्ता संदिग्ध है - ऐसी परिस्थिति में इस तरह के अगर प्रमाणिक एवं गुणवत्ता युक्त संग्रह अगर मिल जाए तो वह बेहद मददगार हो सकता है, खासकर पत्रकारों के लिए। डेटा की गुणवत्ता में सुधार तभी हो सकता है जब हम इसे नीति के लिए उपयोग करते हैं। चल रही महामारी का ही मामला लें। जरा सोचिए कि हमने इस पिछले एक साल में कितना नुकसान उठाया है क्योंकि हमारे पास परीक्षणों, या मौतों की संख्या, या सीरोलॉजिकल सर्वेक्षण, या वेरिएंट की जीनोमिक अनुक्रमण पर पर्याप्त या सटीक डेटा नहीं था। नीति निर्माण के लिए डेटा का होना महत्वपूर्ण होता है। वह आगे कहती हैं- ÷डेटा संग्रह महत्वपूर्ण है - यह शासन करने की कला का हिस्सा है - लेकिन पूरे डेटा सेट को साझा किया जाना चाहिए उस पर काम किया जाना चाहिए ऐसा करना उतना ही महत्वपूर्ण भी है ताकि इसकी सकारात्मक आलोचना हो।

साभार - डाउन टू अर्थ

विलुप्त हो जाएगा हमारे पुरखों का औषधीय पौधों के बारे में संजोया ज्ञान

सदियों से हमारे पुरखे प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके रहते आए हैं। उन्होंने अपने अनुभवों के जरिए ऐसे अनगिनत औषधीय पौधों के बारे में ज्ञान अर्जित किया था जो किसी किताब किसी लेख में दर्ज नहीं हैं, वो बस उन गिने चुने लोगों के पास विरासत के रूप में हैं, जो उस खास भाषाओं के जानकार हैं। उन्होंने इसे विरासत की तरह पीढ़ी दर पीढ़ी संजो के रखा हुआ है, पर जैसे-जैसे यह पारम्परिक स्थानीय भाषाई विविधता खत्म हो रही है, उसके साथ ही यह सदियों पुराने उपचार और औषधीय पौधों का ज्ञान भी खत्म होता जा रहा है। इस पर यूनिवर्सिटी ऑफ ज्यूरिच के शोधकर्ता रोड्रिगो कैमारा लेरेट द्वारा किए एक शोध से पता चला है कि भाषाओं के विलुप्त होने के साथ ही औषधीय पौधों के बारे में जो सदियों पुराना ज्ञान है उसपर भी लुप्त होने खतरा मंडराने लगा है। शोध के अनुसार दुनिया में करीब 7,400 भाषाएं बची हैं, जिनमें से 30 फीसदी को इस सदी के अंत तक कोई बोलने-समझने वाला नहीं होगा। इन भाषाओं के विलुप्त होने के साथ ही इन भाषाओं में संजोया जो अद्वितीय औषधीय ज्ञान है, उसको कितना नुकसान होगा उस बारे में हमारी समझ सीमित है। ऐसे में सबसे बड़ा सवाल यह है कि औषधीय पौधों के बारे में जो यह स्थानीय ज्ञान है वो किस हद तक अलग-अलग भाषाओं से जुड़ा हुआ है। भाषाओं और पौधों के विलुप्त होने के साथ-साथ कितना स्थानीय पारम्परिक ज्ञान गायब हो सकता है। इसे समझने के लिए शोधकर्ताओं ने उत्तरी अमेरिका, उत्तर-पश्चिम अमेज़ोनिया और न्यू गिनी पर शोध किया है, यह तीनो क्षेत्र जैव विविधता के साथ-साथ सांस्कृतिक विविधता के भी धनी हैं।

साभार - डाउन टू अर्थ

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008